ब्रह्माण्ड

एक संक्षिप्त परिचय

Brahmanda-Ek Samkshipta Parichaya

By Ramesh Chander Kapoor

Professor, Indian Institute of Astrophysics

January 2007, April 2011

मुखपृष्ठ- NGC 1365 मंदाकिनी, 2.34 मीटर वेणु बापू दूरदर्शी से लिया गया चित्र

पृष्ठ चित्र : धूमकेतु 2004 Q2 (मैक्होल्ज़) - 15 जनवरी 2005 की रात 14:00 यूटी पर 400 ए एस ए कोडक फ़िल्म पर वेणु बापू वेधशाला के 102 सें मी त्ज़ाइस दूरदर्शी के 10 सें मी सहायक दूरदर्शी पर लगे कैमरे में उतारा गया; उद्भासन 102 मिनट ।

Typesetting : ***Vykat Prints Pvt. Ltd.***

Q5, 2nd Main Road, KSSIDC Industrial Estate, Veerasandra 2nd Stage, Huskur Road, Bangalore - 560 099

ब्रह्माण्ड

एक संक्षिप्त परिचय

एक हज़ार महायुग - 4 अरब 32 करोड़ वर्ष - ब्रह्मा का एक दिन - एक कल्प । ब्रह्मा ने प्रात: जाग कर संसार को विप्लव की अवस्था में पाया और इसे व्यवस्थित किया - यों सृष्टि का निर्माण हुआ । एक कल्प बीतने पर रात हो जायेगी, ब्रह्मा सो जायेंगे और विप्लव की स्थिति पुन: सवेरा होने तक ।

(विष्णु पुराण, प्रथम खंड. 3,12,-15)

एक नूर ते सब जग उपजेया - आदिग्रंथ

ब्रह्माण्ड : प्राचीन दृष्टि

हिन्दू पुराणों के अनुसार शेषनाग पर वाराह, वाराह पर हाथी व इन पर टिके हैं तीन लोक - पाताल, पृथ्वी व आकाश । प्राचीन मिस्र वासियों की तज़वीज दूसरी थी - उनके लिए ब्रह्माण्ड एक चौकोर बक्स था । इसके आधार में पृथ्वी थी और केन्द्र में मिस्र देश । चारों दिशाओं में पहाड़ों की चोटियों पर आकाश टिका था और इसके आधार के नीचे एक नदी बहती थी । मिस्री सूर्य देवता 'रा' रोज़ पूर्व से पश्चिम की ओर इस नदी से जाते थे । रात को क्षितिज के किनारे किनारे चल कर पूर्व में अगली सुबह हाज़िर हो जाते फिर से नया दिन शरू करने के लिए । ग्रीस वासियों के लिए धरती गोल नहीं चपटी व वृत्ताकार थी । इसके चारों ओर ओकनोस नदी बहती थी । इस सब पर आकाश एक बड़े घंटे के समान लटकता था । अमर कवि होमर के अनुसार ओकनोस से ही हर चीज़ का उद्भव हुआ । हिब्रू मतानुसार ब्रह्माण्ड का निर्माण ईश्वर ने छ : दिनों में पूरा किया (1) प्रकाश, दिन, रात्रि, (2) आकाश (3) ज़मीन, सागर, वनस्पति (4) सूर्य, चन्द्रमा, तारे (5) समुद्री जीव, पक्षी (6) मानव ।

प्रागैतिहासिक काल से आकाश की हर चीज़ को, आकाश में घटने वाली हर घटना को इंसान ने कुछ हैरान तो कुछ डरी निगाह से देखा है । पर वह अपने कौतुहल का मारा भी है । जीवन व ब्रह्माण्ड से संबंधित मूलभूत प्रश्नों ने उसे सदा सोचने पर मजबूर किया है । सार्वभौमिक नियमों की जानकारी के अभाव में वह ब्रह्माण्ड का ख़ाका अलौकिक परिकल्पनाओं के रंग में रंगता रहा । इस प्रकार की परिकल्पनाओं से हट कर सभ्यता के इतिहास में सिद्धांत व अवलोकन के समन्वय की गंभीर शुरुआत ग्रीक दार्शनिकों ने की । पश्चिम में पाइथागोरस (582-497 ई.पू.) पहला इंसान था जिसने दावे से कहा कि चाँद की तरह धरती भी गोल है चपटी नहीं । फिलोलेयस (480 ई.पू.- 385 ई.पू.) ने, जो पाइथागोरस के सिद्धांतों को अग्रसर करने वालों में सबसे अग्रणी दार्शनिक समझा गया, पहली बार यह अनुमान व्यक्त किया कि धरती ब्रह्माण्ड के केन्द्र में नहीं बल्कि अंतरिक्ष में अन्य (तब तक ज्ञात) ग्रहों व

तारों के साथ गोलों में एक केन्द्रीय अग्नि के चारों ओर चक्कर लगाती है । सूर्य इस अग्नि का प्रतिबिंब मात्र था । फिलोलेयस की बात को उस ज़माने में धर्मविरुद्ध करार दे दिया गया । क्यों न हो, धरती सदा मनुष्य के ब्रह्माण्ड का केन्द्र रही, वही महत्ता की चीज़ थी । दूसरे ढंग से सोचने की वजह उसे कभी नज़र नहीं आई । फिलोलेयस के विचारों को नकारते हुए, प्रसिद्ध विचारक अरिस्टोटल (384-322 ई. पू.) ने अपनी पुस्तक "आन द हैवेन्स" में ब्रह्माण्ड की जो रुपरेखा प्रस्तुत की उसमें ब्रह्माण्ड अपरिवर्तनशील व गोलाकार था । धरती स्थिर व इसके केन्द्र में थी।

ईसा के बाद दूसरी शताब्दी - प्रसिद्ध खगोलविद् टॉलेमी (100-170 ई.) ने हिप्पार्कस (190-120 ई.पू.) के ब्रह्माण्ड संबंधी विचारों को परिष्कृत कर अपनी पुस्तक में प्रस्तुत किया । टॉलेमी के विचार से भी धरती स्थिर थी । सारा ब्रह्माण्ड - एक विशाल गोले में जड़े सितारे, प्रत्येक ग्रह (बुध. शुक्र, मंगल, वृहस्पति, शनि, व सूर्य एवं चंद्रमा) अलग अलग व्यासार्ध के गोले में जड़ा-पृथ्वी के चारों ओर घूमता था । धरती के चारों ओर घूमते ये ग्रह अपनी कक्षा में छोटे वृत्तों में भी घूमते थे । मनुष्य की सोच की प्रक्रिया पर इस विचार धारा ने कुछ ऐसा कब्ज़ा किया कि टोलेमी के हज़ार साल बाद तक खगोल में एक तरह से कुछ भी हलचल नहीं हुई । इस विषय में वह अंतिम शब्द था । खगोल तब ग्रहों की गतियों या कैलेंडर तक ही सीमित था । ग्रहों की गतियों के बारे में तब तक ज्ञात तथ्य टॉलेमी के सिद्धान्त के आधार पर समझाये जा सकते थे । यद्यपि यह प्रणाली कभी संतोषजनक साबित नहीं हुई पर खगोलविद् के पास न तो उपकरण थे न शुद्ध अवलोकन करने की सामर्थ्य जो वह टॉलेमी पर शंका उठा पाता । यदि आकाश में ग्रहों की चमक बदलती या एक दिशा में बढ़ता ग्रह वापिस चलने लगता तो गोलों का हिसाब थोड़ा और पेचीदा कर दिया जाता । मूल रुप से चित्र वही रहता-विभिन्न आकार के गोलों में जड़े ग्रह व सितारे, धरती इस सब के केन्द्र में । यह ऐसा ही क्यों है, इसके आधार में किसी सार्वभौमिक नियम को देखने की कोशिश नहीं हुई ।

ग़लत सही, इन्सान ने ब्रह्माण्ड को समझने की शुरुआत तो की । बर्बरों के हाथों पांचवीं शताब्दी में रोमन साम्राज्य के पतन होने के बाद शुरु हुआ एक अंधा युग जिसमें ग्रीक विचारकों का दिया ज्ञान लुप्त सा हो गया । पश्चिमी यूरोप में जैसे ज्ञान - विज्ञान की परिपाटी समाप्त हो गई । इसका स्थान लिया चर्च द्वारा प्रतिपादित दर्शन ने । अरबी अनुवाद 'अलमागेस्ट' (महानतम) के रुप में टॉलेमी की रचना अरबों के हाथों फिर यूरोप पहुँची । बारहवीं शताब्दी में खगोल की इस पहली पाठ्यपुस्तक का लैटिन में अनुवाद हुआ । चर्च के विद्वानों ने जाँच परख कर अरिस्टोटल व टॉलेमी का विज्ञान क्रिशिचयन धर्मशास्त्र में समावेशित कर दिया । अरिस्टोटल एक नये रुप में उस ज़माने का प्रामाणिक दर्शन बन गया ।

मध्य युग के बाद यूरोप में नवयुग एक वैचारिक जागृति लाया । धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र में पुराने से असंतुष्ट वैचारिक चिन्तन नई दिशायें खोजने लगा । खगोल में भी एक नयी दिलचस्पी का युग शुरू हुआ । टॉलेमी का सिद्धान्त अवलोकनों की कसौटी पर निरन्तर असफल होता जा रहा था । ग्रहों की गतियाँ सही ढंग से न बता सकने के कारण कैलेंडर में गल्तियां होती जाती थीं । इन बातों पर खोज करते कोपरनिकस को लगा - प्रकृति इतनी पेचीदा व कृत्रिम नहीं हो सकती । यदि ऐसा है तो इसलिए कि हम आकाश को ऐसी जगह से देखते है जिसे हम स्थिर मानते है । क्यों न आकाश को अन्य स्थान, मसलन सूर्य, से देखा जाय ? तब सब अवलोकन सरलता से समझाये जा सकते हैं । काफ़ी सोच विचार व पेचीदा गणनाओं के बाद कोपरनिकस ने यह निष्कर्ष निकाला कि धरती स्थिर नहीं । इसके साथ अन्य ग्रह सूर्य के चारों ओर वृत्ताकार पथों में घूमते हैं । यदि तारे उदय या अस्त होते हैं तो ऐसा धरती के अक्षभ्रमण के कारण होता है । वह वो ज़माना था जब समूचे शिक्षा तंत्र पर चर्च का एकाधिकार था । धर्मग्रंथों की बात को आखिरी लफ़्ज़ मानने वाले धर्माधिकारी विज्ञान के उत्तरोतर खिलाफ़ होते जाते थे । ऐसे में अगर तीस वर्ष तक कोपरनिक्स के ज़हन में ये ख़्यालात दफ़न रहे तो आश्चर्य नहीं । काम पूरा हो जाने पर 1530 ई.में पहली बार कोपरनिकस ने अपनी परिकल्पना की रुपरेखा चन्द दोस्तों के सामाने रखी । बदले में सुझाव उसे चुप रहने का मिला । आख़िरकार देहान्त से थोड़ा पहले, 1543 ई. में एक पुस्तक (द रिवोल्यूश्निबस ऑरबियम सेलेस्टियस) के रुप में कोपरनिकस की परिकल्पना प्रकाशित हुई । अपनी पुस्तक उसने सिर्फ एक बार ही देखी जब मृत्युशय्या पर उसके हाथ में इसकी प्रति थमाई गई । विज्ञान के इतिहास में यह पुस्तक एक अभूतपूर्व कदम था । पर रोमन कैथलिक चर्च ने काफ़ी समय तक इस परिकल्पना पर ज़बरदस्त प्रतिक्रिया व्यक्त की (पोप द्वारा वर्जित पुस्तकों के इंडेक्स में 1835 ई. तक यह पुस्तक शामिल रही) । उस समय जब अरिस्टोटल व टॉलेमी की तूती बोलती थी कोपरनिकस धरती से ब्रह्माण्ड के केन्द्र की राजगद्दी छीनने का कसूरवार बन गया । गणित के उलझाव से भरी कोपरनिकस की पुस्तक का ग़र्मजोशी से स्वागत न हुआ । मार्टिन लूथर तक ने कोपरनिकस को बेवकूफ़ व हेरेटिक कहा । इसके बावजूद उसके विचारों ने बहुत से वैचारिकों के चिन्तन को प्रेरित किया ।

1600, 17 फरवरी - रोम में कोपरनिकस के विचारों को अग्रसर करने वाले ब्रूनो को अपनी नास्तिकता के कारण इन्क्विज़िशन ने ज़िंदा जलवा दिया । नवयुग में अपना आसन डोलता देख कर धर्माधिकारियों ने ऐसे नास्तिकों के दमन के लिए इन्क्विज़िशन बनाया था । ब्रूनो बाग़ी समझा जाता था व पहले भी धर्माधिकारियों से दूसरे फेरों में उलझ चुका था । जनसाधारण इतना डरपोक था कि ब्रूनों के होम पर किसी ने, अगर चाही भी होगी तो, चूँ तक न की । इंग्लैंड में तब स्थिति बेहतर थी । कोपरनिकस के विचारों के समर्थक ब्रिटिश

विचारक डिग्स (1546-1595) के सामने ऐसा ख़तरा नहीं आया । डिग्स ने कोपरनिकस की परिकल्पना को तर्क का आधार दिया और यह प्रतिपादित किया कि बाकी तारे भी सूर्य जैसे हैं और अनंत आकाश में फैले हैं । प्रसिद्ध डैनिश खगोलविद् टाइको ब्राहे (1546-1601) तक ने कोपरनिकस को स्वीकार नहीं किया पर ब्राहे के ग्रहों की गतियों के संबंध में किये अवलोकन इतने शुद्ध थे कि इनके आधार पर सत्रहवीं शताब्दी के आरंभ में जर्मन खगोलविद् व ब्राहे के सहायक केप्लर (1571-1630) ग्रहों के पथों संबंधी तीन महत्वपूर्ण नियम प्रस्तुत कर सके । कोपरनिकस की परिकल्पना को केप्लर से महत्वपूर्ण समर्थन मिला । फ़र्क इतना कि ग्रहों के पथ गोलाकार न होकर दीर्घवृत्ताकार साबित हुए । इन दीर्घवृत्तों के एक फ़ोकस पर स्थापित हुआ सूर्य ।

अक्तूबर 02, 1609 की रात । इटली में गैलिलियो (1564-1642) ने आसमान को अपने बनाये दूरबीन से पहली बार देखा । देखा क्या अपने लिए गहरी खाई खोद डाली । वे पहले से कोपरनिकस की परिकल्पना पढ़ाते रहे थे । धरती की तरह चंद्रमा पर पहाड़ हैं, गड्ढे हैं, शुक्र की चंद्रमा जैसी कलायें, सूर्य के कलंक व इनसे सूर्य के अक्षभ्रमण का सुझाव इस सब का ज्ञान सभ्यता के इतिहास में इन्सान को पहली बार हुआ । इस पहली बार के दर्शन ने गैलिलियो की मानसिक स्थिति को क्या कर दिया होगा यह बयान शब्दों में तो न हो सकेगा । वृहस्पति ग्रह के चारों ओर घूमते चार छोटे छोटे पिंड गैलिलियो को एक छोटे से

2.34 मीटर *वेणु बापू* ***दूरदर्शी***

सौरमण्डल का आभास दे गये । काफ़ी समय तक अपने दूरदर्शी से इनकी गति व शुक्र की कलाओं का अध्ययन कर गैलिलियो को लगा आकाश की हर चीज़ धरती के चारों ओर नहीं घूमती । टॉलेमी के सिद्धान्त में शुक्र की कलाओं के लिए कोई वजह नहीं हैं । कोपरनिकस की तज़वीज़ में इन कलाओं का वैसा ही कारण है जैसा चंद्रमा का । आकाशगंगा के असंख्य तारों को देख कर गैलिलियो को भान हुआ कि सूर्य भी उनके जैसा एक सितारा है । सूर्य की सतह पर उसके अक्षभ्रमण के कारण स्थान बदलते कलंकों ने गैलिलियो के सामने अरिस्टोटल की यह धारणा खंडित कर दी कि सूर्य स्वयं में निष्कलंक व पूर्ण है या ब्रह्माण्ड अपरिवर्तनशील है । ब्रह्माण्ड को इस नये रुप में देख कर गैलिलियो को कोपरनिकस सच्चाई के ज़्यादा नज़दीक लगा । उन्होंने सोचा दूरदर्शी से अपनी आँखों से ब्रह्माण्ड को इस विलक्षण रुप में देख कर कोई भी कोपरनिकस को स्वीकार कर लेगा । पर ऐसा नहीं हुआ । शक्तिशाली चर्च का विरोध तब आसान न था । फिर गैलिलियो की खोजें आम दुनिया के लिए अर्थ भी नहीं रखती थीं । अगले साल से समय-समय पर गैलिलियो के ख़िलाफ़ काग़ज़ात इकट्ठे होने लगे । 1633 में आख़िरकार इन्क्विज़िशन द्वारा उन पर अपनी ग़ल्तियाँ मान लेने के लिए दबाव डाला गया । बाक़ी ज़िन्दगी 1642 तक वे अपने घर में नज़रबंद रहे ।

वैचारिक क्रान्ति कोपरनिकस से जो शुरु हुई तो दब न सकी । गैलिलियो यह न समझ पाये थे कि यदि धरती व अन्य ग्रह सूर्य का चक्कर लगाते हैं तो क्यों कर । इनकी गतियों को समझाने वाला कोई सार्वभौमिक कारण भी हो सकता है यह वे नहीं जान पाये। उनके लिए यह सब यदि था तो इसलिए कि ब्रह्माण्ड की प्रकृति ही कुछ ऐसी है । समय आने पर न्यूटन ने 17 वीं शताब्दी व फिर आइन्स्टाइन ने बीसवीं शताब्दी में इस विषय में अपने विचार प्रस्तुत करने थे।

लंदन, 1665-66 का प्लेग । कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के बन्द हो जाने से 23 वर्षीय आइज़क न्यूटन को देहात में जाना पड़ा । इन्हीं दो वर्षो के दौरान न्यूटन ने विज्ञान को अपना अमूल्य योगदान दिया । केप्लर के ग्रहों की गति के नियमों का अध्ययन करते न्यूटन ने गति व गुरुत्वाकर्षण के महत्वपूर्ण नियमों की खोज की । धरती समेत अन्य ग्रहों को सूर्य से 'बांध' कर उसके चारों ओर घुमाने वाली अदृश्य शक्ति यही गुरुत्वाकर्षण है - इसी आकर्षण के नियम के आधार पर ध्रुवों पर धरती का चपटापन व समुद्र में उठने वाले ज्वार भाटा समझाये जा सके । इसके साथ सिलसिला शुरु हुआ ग्रहों के पथों की गणना, तारों की दैनिक व वार्षिक गति, नये ग्रहों की खोज, ग्रहों व तारों का रुप, ब्रह्माण्ड में पदार्थो की मात्रा व पदार्थ के अन्य गुणों की माप व विवेचना का । अट्ठारहवीं शताब्दी के अंत तक खगोल ने फलित ज्योतिष (एस्ट्रोलॉजी) व धार्मिक पृष्ठभूमि को तिलांजलि दे दी थी । खगोल स्वयं ब्रह्माण्ड के गुरुत्वीय, वर्णनात्मक व वेधात्मक अध्ययन में बंट गया ।

विलियम हरशेल द्वारा 1781 में अपने दूरदर्शी से युरेनस ग्रह की खोज से पहली बार खगोलविद् के लिए सौर मण्डल की सीमा शनि ग्रह के पथ से बाहर पहुँची । सौरमंडल से बाहर दूर अंतरिक्ष में एक दूसरे के चारों ओर घूमते युग्म तारों के अध्ययन से हरशेल ही ने अट्ठारहवीं शताब्दी में सबसे पहले यह साबित किया कि वे भी गुरुत्वाकर्षण के उसी नियम को मानते हैं जिसके आधार पर हम सूर्य के चारों ओर घूमते ग्रहों की गतियों को समझते हैं । न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण संबंधी सिद्धान्त सार्वभौमिक सिद्ध हुआ । विलियम हरशेल को ही आकाश में तारों से अलग किस्म के बादल सदृश प्रकाश पुंजों की खोज का श्रेय प्राप्त हुआ । इन्हें नाम दिया गया 'द्वीप ब्रह्माण्ड' । थॉमस राइट व काँट जैसे विचारकों ने हरशेल की खोज से पहले ही इनके बारे में कल्पनायें की थीं । यद्यपि द्वीप ब्रह्माण्ड बीसवीं सदी में हमारी आकाशगंगा जैसी पर इससे अकल्पनीय दूरियों पर स्थित विशाल व स्वतंत्र संस्थाओं (मंदाकिनियों) के रुप में जाने जा सके, हरशेल द्वारा ही धरती को ब्रह्माण्ड में सही स्थान मिला । यह थी शुरुआत आकाशगंगा से बाहर के खगोल की । न्यूटन के गुरुत्व के सिद्धान्त के आधार पर ही नेप्चून व बाद में प्लूटो नामक ग्रहों की खोज संभव हो सकी । न्यूटन के सिद्धान्त की सफलता के साथ ही कोपरनिकस से शुरु हुई वैचारिक क्रांति पूरी हो गई । आधुनिक विज्ञान का जन्म हुआ । सिद्धान्त व अवलोकन के समन्वय से ब्रह्माण्ड को समझने को तत्पर इन्सान ने फिर मुड़ के न देखा ।

आधुनिक खगोल

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में एक और क्रांति का सूत्रपात हुआ जब भौतिकी के क्षेत्र में वर्णक्रम विश्लेषण, दीप्तिमिति व फोटोग्राफी का आविर्भाव हुआ । इनके सम्मिलन से हुआ आधुनिक खगोलभौतिकी का जन्म-तारों की गतियों, उनकी रासायनिक संरचना, तापक्रम, अक्षभ्रमण, चुम्बकत्व, विकासक्रम, ब्रह्माण्ड में पदार्थ की विभिन्न अवस्थाओं में मौज़ूदगी ऐसी कितनी ही बातों का पता चला । बीसवीं शताब्दी में एक ओर आइन्स्टाइन के सापेक्षता के सिद्धान्त ने चिन्तन को नई दिशा दी । भौतिकी, रसायन की खोजों व टेक्नॉलाजी के विकास से वैज्ञानिक ब्रह्माण्ड को नई दृष्टि से देखने को मजबूर हुए । 100 इंच के विशाल दूरदर्शी से बीसवीं शताब्दी के दूसरे व तीसरे दशक में नीहारिकाओं की सही व्याख्या अमरीकी खगोलविद् एडविन हबल ने की । हमारी आकाशगंगा का हिस्सा समझी जाने वाली सर्पिलाकार (और दीर्घवृत्ताकार) धुएं के छोटे बादल के सदृश दिखाई देने वाली नीहारिकायें इसके बाहर इसकी तरह की स्वतंत्र मंदाकिनियाँ सिद्ध हुईं । करोड़ों - खरबों तारों के विशाल समूह, एक दूसरे से अकल्पनीय दूरियों पर स्थित । तीस के दशक में ही रेडियो खगोलविज्ञान का जन्म हुआ । गैलिलियो के दूरदर्शी के बाद यह दूसरा महत्वपूर्ण कदम था खगोलीय अवलोकन के क्षेत्र में जब 1934 में ग्रोट रीबर ने

हान्ले, लद्दाख़ में 4500 मीटर की ऊँचाई पर भारतीय ताराभौतिकी संस्थान की भारतीय खगोल वेधशाला

पहली बार सिग्नस तारा समूह से आती रेडियो तरंगें अपने रेडियो दूरदर्शी के द्वारा पकड़ीं । आधुनिक टेकनालॉजी ने आज विद्युच्चुम्बकीय वर्णक्रम को पूर्ण रूप से अपनी पहुँच में ले लिया है । जटिल उपकरणों, चाहे वे धरती पर स्थित हों, ऊँचे पहाड़ों पर या अंतरिक्ष में उपग्रह पर

गौरीबिदनूर रेडियो दूरदर्शी

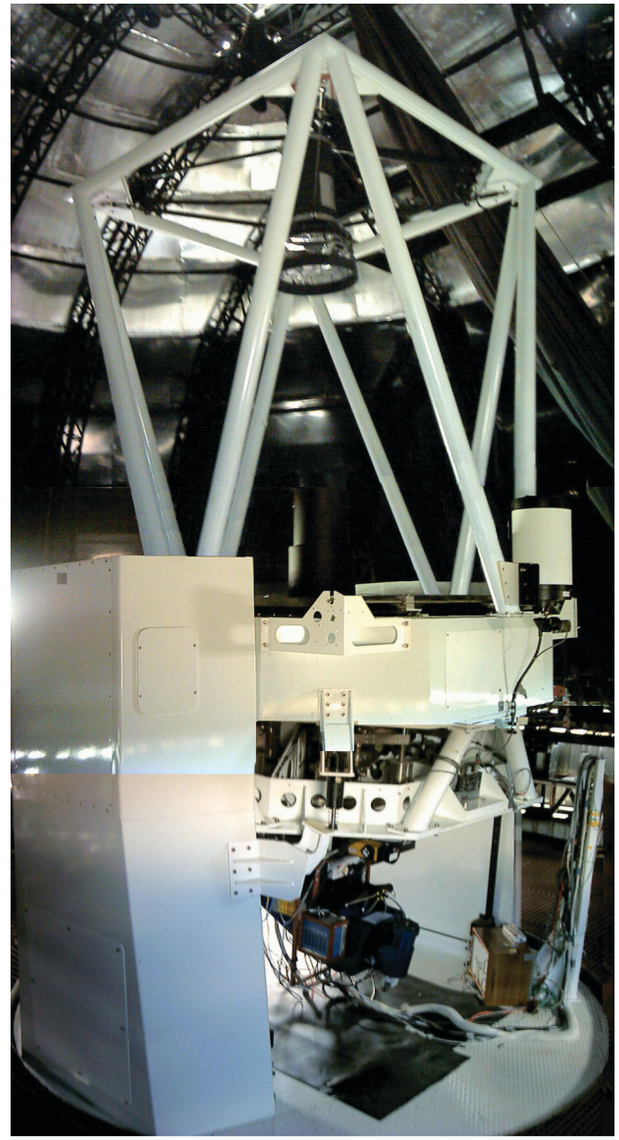

भारतीय खगोल वेधशाला, हान्ले का 2 मीटर हिमालयन चंद्रा दूरबीन

स्थापित, से हुई खोजों ने हमारे ब्रह्माण्ड की 500 वर्ष पहले की रुपरेखा को आमूल चूल बदल डाला है । इसका स्थान लिया है बहुत ही जटिल व कल्पनातीत रुप से विशाल ब्रह्माण्ड ने और

इस सब के पीछे है वैज्ञानिकों की जीवनपर्यन्त की तपस्या व लगन जिसके सहारे मूलभूत प्रश्नों पर विचार करने की दिशा में हम कदम बढ़ा सके हैं ।

ब्रह्माण्ड के विषय में हमें जानकारी अंतरिक्ष से आती विभिन्न आकाशीय पिंडों द्वारा विकीर्ण ऊर्जा व कॉस्मिक किरणों के माध्यम से मिलती है । विकीर्ण ऊर्जा में शामिल है गामा व एक्स किरणें, अल्ट्रावायलेट विकिरण, प्रकाश, इंफ्रारेड, माइक्रोवेव व रेडियो तरंगें । इन्हें पकड़ने व अध्ययन करने के लिए खगोलविद् विभिन्न प्रकार के उपकरणों का सहारा लेता है जैसे प्रकाश के लिए दूरदर्शी, माइक्रोवेव व रेडियो तरंगों के लिए रेडियो दूरदर्शी । गुब्बारों, राकेटों व कृत्रिम उपग्रहों पर स्थापित विशेष यंत्र व अंतरिक्ष में छोड़ी गई स्वचालित प्रयोगशालाऐं विकीर्ण उर्जा के अन्य रूपों जैसे एक्स किरणों व अल्ट्रावायलेट किरणों को पकड़ने व विश्लेषण करने में सहायक होते हैं । अंतरिक्ष से आते प्रकाश व अन्य तरंगों के विस्तृत अध्ययन ने ग्रहों, सूर्य, तारों के बीच के अंतरिक्ष में फैले अत्यंत विरल गैसीय माध्यम (अंततारकीय माध्यम) की रासायनिक संरचना का रहस्य खोल कर यह स्पष्ट कर दिया है कि रासायनिक दृष्टि से ब्रह्माण्ड में एकरूपता है । जिन 92 स्थायी तत्वों से हम धरती पर परिचित हैं यही ब्रह्माण्ड में अलग अलग परिमाण में मौजूद हैं । इनमें भी, सबसे हल्के तत्व हाइड्रोजन, व उसके बाद हीलियम, की बहुलता है । शेष भारी तत्व तो बहुत छोटी सी मिलावट के रुप में विद्यमान हैं । हम, धरती धूमकेतु व उल्कायें इसी अशुद्धि के उदाहरण हैं ।

ब्रह्माण्ड : एक सूक्ष्म परिदृष्टि

प्रत्येक तत्व रासायनिक दृष्टि से दूसरे से अलग है । इसकी इकाई है परमाणु जिसमें उस तत्व के गुणों का समावेश रहता है । परमाणु प्रोटानों व न्युट्रॉनों से बना एक नाभिक है जिसके चारों ओर इलेक्ट्रॉन चक्कर काटते हैं । दूसरे शब्दों में, परमाणु कुछ मूलभूत कणों से मिलकर बना है । वैसे तो भौतिकीविद् का बहुत से मूलभूत कणों से परचिय है, इस लेख के संदर्भ में हमारी जान पहचान इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन, न्यूटि २२७नो व फोटॉन से होनी काफी है । ब्रह्माण्ड में पदार्थ के विभिन्न रूपों से हमारा सामना होता है (ठोस, द्रव, गैस व प्लाज़्मा) लेकिन इन सभी में फर्क उनमें मौजूद मूलभूत कणों के बीच की अंत:क्रियाओं व संघटन के अंश से है । मूलभूत कणों को कभी आँख से देखना संभव न होगा न ही कभी उस तरह से इनका वर्णन किया जा सकेगा जैसे हम रोटी, झरना या आकाशगंगा का करते हैं । प्रत्येक कण को निर्धारित करने वाली कुछ राशियाँ हैं । जैसे मात्रा, विद्युत आवेश, स्पिन, पैरिटी व स्ट्रेंजनेस इत्यादि । यदि मूलभूत कणों के

आकार-प्रकार के लिए हम सूचक संख्याओं का प्रयोग करते है तो वैचारिक स्पष्टता के लिए । इनसे अंतरंग परिचय हमने बीसवीं सदी में पाया है व इनके आपस के विलक्षण व्यवहार से हमें ब्रह्माण्ड की 'रग रग' से वाकिफ़ होने में मदद मिली है । मूलभूत कण इतने छोटे व हल्के होकर भी एक दूसरे को अपनी मौज़ूदगी का आभास हमेशा देते हैं । ऐसा ये चार प्रकार की अंत:क्रियाओं (आकर्षण / प्रतिकर्षण) से करते हैं । इनके नाम हैं प्रबल बल (स्ट्राँग इन्टरएक्शन), निर्बल बल (वीक इन्टरएक्शन), विद्युत्चुम्बकीय बल व गुरुत्व । इनमें प्रबल बल सर्वाधिक शक्तिशाली है जबकि गुरुत्व इसका केवल 10^{-38} गुना । सूर्य व तारों से आती ऊर्जा के लिए उत्तरदायी है प्रबल अंत:क्रिया । इसी के कारण उनमें विभिन्न तत्वों, व आख़िरकार हमारा निर्माण संभव हो सका । शक्ति में प्रबल बल से थोड़ा ही कम है विद्युत्चुम्बकीय बल । गतिशील आवेशित कणों के बीच लगने वाले इस आकर्षण - विकर्षण के विभिन्न रूप एक दूसरे से इतने जुदा हैं कि एक बारगी पहचान होनी मुश्किल है । प्रकाश, घर्षण, संगीत, प्रोटीन, जैविक क्रियायें - सोच विचार से लेकर यौनेच्छायें व खानपान तक, मानव शरीर, समस्त रसायन शास्त्र व इलेक्ट्रॉनिकी सभी के पीछे इसका हाथ है । इस बल से एक हज़ार अरब गुना कमज़ोर है निर्बल अंत:क्रिया जो रेडियोधर्मिता के लिए उत्तरदायी है । गुरुत्वाकर्षण इन सबसे कमज़ोर है । पर ब्रह्माण्ड का प्रत्येक कण दूसरे को अपने गुरुत्व से प्रभावित करता है । मूलभूत कणों के स्तर पर इस रुप में यह बल चाहे महत्वहीन हो, इनके बड़े समुदायों (ग्रह, तारे इत्यादि) के संदर्भ में इसके महत्व को नहीं नकारा जा सकता । यह बल चंद्रमा को धरती से, धरती को सूर्य से एवं सूर्य को आकाशगंगा से बाँधता है । आकाशगंगायें अपने आकर्षण से एक दूसरे को प्रभावित करती हैं ।

ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी घटता है या मौज़ूद है-पदार्थ, विकिरण या अपने वजूद के प्रति सजग जीवन, मूलभूत कणों व उनके समुदायों में विभिन्न स्तरों पर सम्पन्न होती इन अंत:क्रियाओं का कमाल है । ऐसा समझा जाता है कि कभी तो इन सभी अंत:क्रियाओं (बलों) को एक सुपरबल के विभिन्न पहलुओं के रूप में निरुपित किया जा सकेगा । इस प्रकार के एकीकरण (यूनिफिकेशन) का कार्यक्रम भौतिकी में ज़ोरों पर है । सफलता, यद्यपि, अभी दूर ही है । इस विषय में एक विशेष प्रगति तब संभव हुई जब ग्लाशो, वाइनबर्ग व सलाम (1979 के इस कार्य के लिए भौतिकी में नोबेल पुरस्कार विजेता) ने बीसवीं संदी के सातवें दशक में निर्बल व विद्युत्चुम्बकीय बल को एकीकृत करने में अभूतपूर्व सफलता पाई । देखना यह है कि आइन्स्टाइन का सब बलों को निरुपित करने वाले सुपरबल को खोज निकालने का दशकों पूर्व किया गया असफल प्रयास कभी सफलता का वरण कर सकेगा यद्यपि इस प्रकार के बल को सुपरग्रेविटी नाम दिया गया है ।

ब्रह्माण्ड : विशद परिदृष्टि

सौर मण्डल

अब हम ब्रह्माण्ड के विशद रुप का जायज़ा लेने की स्थिति में हैं । हमारी धरती 6378 कि.मी. औसत व्यासार्थ का छ: हज़ार अरब अरब टन वज़नी गोला है जो न सिर्फ अपने अक्ष पर घूमता है बल्कि सूर्य के चारों ओर चक्कर भी काटता है । सूर्य एक सितारा है, आकाशगंगा में मौज़ूद सैकड़ों अरबों सितारों में एक । पृथ्वी सहित सूर्य के चारों ओर 8 ग्रह घूमते हैं । बहुत से ग्रहों के अपने चारों ओर घूमते उपग्रह हैं । चंद्रमा धरती का उपग्रह कहलाता है । सूर्य के परिवार के वर्तमान आकार का एक अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि जहाँ लगभग 4 लाख कि.मी. दूर चंद्रमा से प्रकाश 1.3 सैकंड में पहुँचता है, सौरमण्डल के सबसे बाहरी ग्रह प्लूटो से आने में इसे औसतन साढ़े पाँच घंटे लग जाते हैं । एक सैकंड में प्रकाश की किरण, यदि लगा सके तो, धरती के चारों ओर सात बार घूम जायेगी । ग्रहों, लघु ग्रहों

हेल बाप् धूमकेतु, 2.34 मीटर वेणुबापू दूरबीन से लिया गया चित्र

उपग्रहों के अलावा सौर मण्डल में शामिल हैं अनेक धूमकेतु व असंख्य उल्कायें । लघु ग्रह हैं मंगल व वृहस्पति की कक्षाओं के बीच के अंतरिक्ष में मौज़ूद हज़ारों लाखों की संख्या में छोटे आकार के पिण्ड। धूमकेतुओं से तो इन्सान का परिचय बहुत पुराना है । सम्राटों, साम्राज्यों के पतन व महामारियों की कितनी घटनायें धूमकेतुओं के आगमन के साथ जुड़ गईं । इनकी लगभग दस अरब टन (10^{16} ग्राम) की सारी मात्रा कुछ ही कि. मी. आकार के एक ठोस पिण्ड में केन्द्रित रहती है । इसे नाभिक कहा जाता है । पानी, मीथेन, कार्बन मोनोक्साइड, अमोनिया व धूल कणों की जमी हुई अवस्था : बड़े आकार का अशुद्ध बर्फ़ का एक गोला । इसको गैस व धूल कणों का विशाल बादल (कोमा) घेरे रहता है । अपने अतिशय रुप से दीर्घवृत्ताकार पथ में घूमता हुआ धूमकेतु जैसे जैसे सूर्य के नज़दीक पहुँचता जाता है वैसे वैसे बढ़ती हुई गर्मी व सूर्य से आती शक्तिशाली आवेशित कणों की बौछार (सौर वायु) इसके बादल के फैलते पदार्थ को बुहारती जाती है सूर्य से उल्टी दिशा की ओर, और इस तरह धूमकेतु की पूँछ बननी शुरु हो जाती है । सूर्य के बहुत नज़दीक पहुँचने तक तो यह लाखों किलोमीटर लंबी हो जाती है । धूमकेतु के सूर्य से दूर जाते समय यह फिर छोटी होती जाती है । उल्कायें तो आपने अक्सर रात में आकाश में टूटते तारों के रूप में देखी होंगी । ये असल में अंतरिक्ष में विचरते विभिन्न आकार के धातु, सिलिकेट या धातु मिश्रित सिलिकेट प्रस्तर हैं । बहुतों का आकार शायद पिन के सिर जितना होगा । पृथ्वी के गुरुत्व के वशीभूत ये इसकी ओर खिंचे चले आते हैं । वायुमंण्डल से 20-40 कि.मी. प्रति सेकंड की रफ़्तार से गुज़रते समय ये इतने ग़र्म हो जाते है कि अधिकांश तो जलकर ख़ाक हो जाते हैं । यही तारे का टूटना है । विरले ही (कई बार कई किलोग्राम भार के) धरती पर, वह भी झुलती अवस्था में, पहुँच पाते हैं । अंतरिक्ष के ये मेहमान हमारे बड़े काम के हैं क्यों कि इनके अध्ययन से ब्रह्माण्ड के इतिहास के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है ।

आकाशगंगा

सौर मण्डल की 99 प्रतिशत मात्रा इसके शासक सूर्य में निहित है । सूर्य पृथ्वी का निकटतम तारा, जो अपनी गर्मी अपने आप पैदा करता है । इसकी सतह का ताप है 6000 डिग्री केल्विन (केल्विन = 273° + डिग्री सेन्टीग्रेड) जबकि केन्द्र भाग का ताप डेढ़ करोड़ डिग्री पहुँचता है । यहाँ हाइड्रोजन नाभिकीय प्रकियाओं के ज़रिये हीलियम में बदलती है । इसमें सूर्य के पदार्थ के 44 लाख टन प्रति सेकंड आइन्स्टाइन के मात्रा - ऊर्जा संबंध के अनुसार ऊर्जा में बदलकर सूर्य को तीन अरब अरब अरब कैंडिल या 10^{33} अर्ग प्रति सेकंड की तेजस्विता प्रदान करते हैं । विद्युत्चुम्बकीय विकिरण, जिसका वर्णक्रम गामा किरणों से लेकर रेडियो

तरंगों तक फैला है, के रुप में यह ऊर्जा अंतरिक्ष में विकीर्ण होती है । सूर्य से एक सैकंड में विकीर्ण ऊर्जा धरती पर सभी मोटर गाड़ियों को एक करोड़ वर्ष (रोज़ के 100 कि.मी. के हिसाब से) दौड़ाते रहने के लिए बहुत होगी । पिछले 460 करोड़ साल से सूर्य ऐसे ही विकिरण करता रहा है । इतने ही समय तक भविष्य में यह करता रहेगा । जीवनदाता के रुप में इसकी वंदना इन्सान ने चिरकाल से की है । उसके लिए आकाश में सर्वाधिक महत्व की वस्तु होने के बावज़ूद यही सूर्य आकाशगंगा के खरबों तारों के बीच महज़ एक आम सितारा है । सूर्य पृथ्वी से 15 करोड़ कि.मी. की औसत दूरी पर स्थित है । यह दूरी एक एस्ट्रोनॉमिकल यूनिट (ए.यू.) कहलाती है । पृथ्वी के 100 ए.यू के घेरे के अंदर समूचा सौरमण्डल आ जाता है । सौरमण्डल के बाहर दूर दूर तक अंतरिक्ष खाली सा है । सूर्य के बाद पृथ्वी का निकटतम तारा है प्रॉक्सिमा सेन्टारी, सेन्टारस तारा समूह (कॉस्टेलेशन) में एलफ़ा सेन्टारी नामक त्रियुग्मी तारे का तीसरा घटक, जो हमसे 26,500 ए.यू. (चालीस हज़ार अरब कि.मी.) की दूरी पर है । इस दूरी को पार करने में 40,000 कि.मी. प्रति घंटे की रफ़्तार से चलने वाले अंतरिक्ष यान को एक लाख साल लग जाएँगें । आकाशगंगा के अन्य तारे पृथ्वी से और भी ज़्यादा दूर है । इन दूरियों को व्यक्त करने के लिए ए.यू. बहुत छोटी इकाई है । अधिक सुविधाजनक इकाइयां हैं प्रकाश वर्ष व पारसेक । एक प्रकाश वर्ष यानी वह दूरी जो प्रकाश 3 लाख कि.मी. प्रति सेकंड से चल कर एक वर्ष में पार करता है । एक पारसेक वह दूरी है जिस पर पृथ्वी की 15 करोड़ कि.मी. व्यासार्ध की कक्षा 1/3600 डिग्री (एक आर्क सैकंड) का कोण बनाती है । एक पारसेक अर्थात् 3.2625 प्रकाश वर्ष । प्रॉक्सिमा सेन्टारी हमसे 4.2 प्रकाश वर्ष दूर है अर्थात् इसका प्रकाश हम तक 4.2 वर्ष में पहुँचता है ।

सूर्य से 1000 प्रकाश वर्ष के घेरे के भीतर करोड़ों तारे हैं । इनमें बहुत से सूर्य जैसे हैं । आकाशगंगा में अधिकांश तारों का भार सूर्य के दसवें से लेकर 50 गुना तक है । कुछ तारे एक दूसरे के आकर्षण में गिरफ़्तार एक केन्द्र के चारों ओर चक्कर लगाते हैं (युग्म तारे, त्रियुग्म तारे इत्यादि) । बहुत से अपनी चमक बदलते रहने के लिए विख्यात है (परिवर्ती तारे) । आकार में कुछ पृथ्वी से बराबरी करते हैं (श्वेत वामन या व्हाइट ड्वार्फ) तो अन्य सूर्य से भी सैंकड़ों गुना बड़े (लाल रंग के विशालकार तारे या रेड जायंट) । सूर्य आम आकार प्रकार का तारा पृथ्वी से 109 गुना बड़ा है अर्थात इसमें 109 x 109 x 109 = 13 लाख पृथ्वियाँ समा जायेंगी । न्यूट्रॉन तारे जो सूर्य से भार में लगभग 1.4 गुना होंगे, आकार में बंगलौर शहर से बड़े नहीं होंगे ।

ओरॉयन नीहारिका, 2.34 मीटर वेणु बापू दूरबीन से लिया गया चित्र

हमसे 10 हज़ार प्रकाश वर्ष के घेरे में जिन अन्य दर्शनीय चीज़ों की ओर हमारा घ्यान आकर्षित होता है उनमें हैं कहीं कहीं बेतरतीब या गोलाकार गुच्छों के रूप में मौज़ूद तारों के पुंज । आकाशगंगा में मौज़ूद तारों के बीच की औसत दूरी वैसे तो कुछ प्रकाश वर्ष है पर गुच्छों में तारे इसके अपेक्षाकृत ज़्यादा नज़दीक होते हैं । बेतरतीब पुंजों में तारों की संख्या शायद सैकड़ों में न पहुँचे, पर नियमित रुप लिये गोलाकार तारा पुंजों (ग्लोबुलर क्लस्टर) में तारों की संख्या 50 हज़ार से कई लाख तक हो सकती है । इनके अलावा आकाशगंगा के सदस्यों के रूप में हम पाते हैं गैस के विशाल बादल, कुछ छितराये तो कुछ ज़्यादा नियमित गोल या वलयाकृति लिये । इन्हें नीहारिकायें कहते हैं । छितराई नीहारिकाओं (चित्र 5) से तारों के जन्म की कहानी जुड़ी है तो इनसे अपेक्षाकृत छोटी गोलाकार व वलयाकार नीहारिकाओं (चित्र 6) का जन्म तारों से उनकी प्रौढ़ावस्था में होता है ।

एक आम तारा, सूर्य के सदृश, मुख्यतया हाइड्रोजन व हीलियम का विशाल गोला होता है जिसमें अन्य तत्व थोड़ी मात्रा में शामिल होते हैं । तारों से आता प्रकाश वर्णक्रमदर्शी में उन्हीं इंद्रधनुषी रंगों में बंट जाता है जिनसे मिलकर सूर्य का प्रकाश बना है । इस वर्णक्रम में मौज़ूद चमकीली या काली रेखाओं से व दीप्तिमिति से तारों के बारे में बहुत महत्वपूर्ण जानकारी हासिल होती है, यथा उनमें मौज़ूद रासायनिक तत्व, परमाणुओं या अणुओं की स्थिति,

गैसीय पदार्थ की गतियाँ, तारे की चमक, मात्रा, दूरी, आयु व अन्य बातें । सूर्य से बहुत भारी तारे लाखों साल जीते हैं तो इसके से दस अरब वर्ष । तारों का उद्भव विकास व अंत अपने आप में खगोलविद् के लिए अत्यन्त चुनौती भरा विषय है । बनने से लेकर अंत तक तारे का जीवन बहुत सी अवस्थाओं से गुज़रता है । सूर्य के जैसे तारे हाइड्रोजन गैस व धूल के विशाल चमकहीन बादलों के सिकुड़ने से बनते है । आदि से अंत तक तारे के जीवन में गुरुत्वाकर्षण एक महत्वपूर्ण, व अंतिम समय में विशेष रूप से एक निर्णायक, भूमिका निभाता है । गुरुत्व के बल के कारण ही प्रारंभ में गैस का एक विशाल बादल आकाशगंगा के किसी कोने में सिकुड़ना शुरु कर देता है । सिकुड़ने से इसमें गर्मी पैदा होती है । और एक समय यह चमकने लगता है - सतह अपेक्षाकृत ठंडी पर केन्द्र भाग अत्यन्त गर्म । लगभग 10 लाख साल में केन्द्र का ताप एक करोड़ डिग्री तक पहुँच जाता है तो इसकी हाइड्रोजन नाभिकीय प्रक्रियाओं में हीलियम में बदलने लगती है जिससे सिकुड़ने की क्रिया धीमी पड़ जाती है । कई अरबों वर्ष तक तारा इसी प्रकार हाइड्रोजन फूँक कर रोशनी पैदा करता है । आखिर केन्द्र में जब सब हाइड्रोजन जलकर हीलियम में तब्दील हो जाती है तो ऊर्जा उत्पादन की दर घटने से केन्द्र फिर सिकुड़ने लगता है । इससे केन्द्र का ताप फिर बढ़ता है । ऐसे में नाभिकीय प्रक्रियायें केन्द्र से बाहर शुरू होती हैं जहाँ हाइड्रोजन अभी उपलब्ध है । तारे का केन्द्र भाग जिसमें इसकी

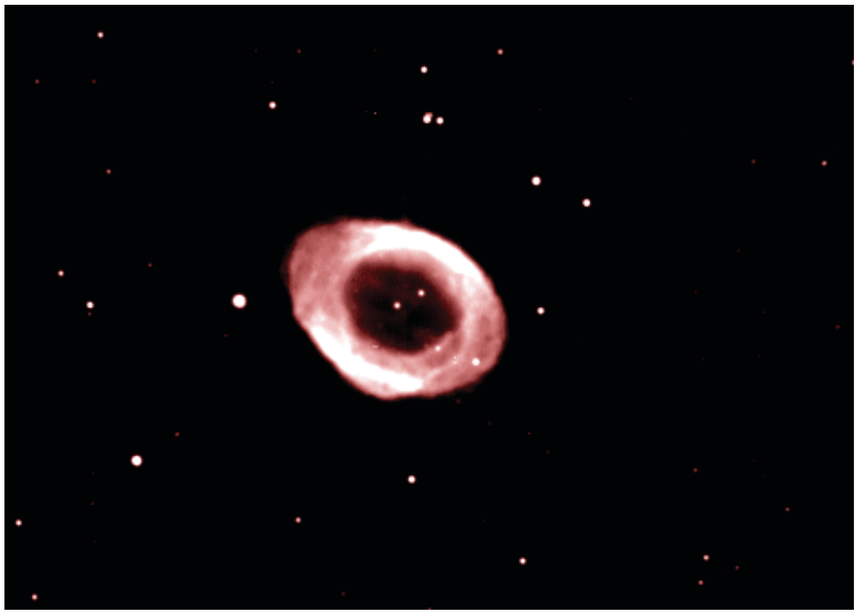

वलय नीहारिका, 2 मीटर हिमालयन चंद्रा दूरबीन से लिया गया चित्र

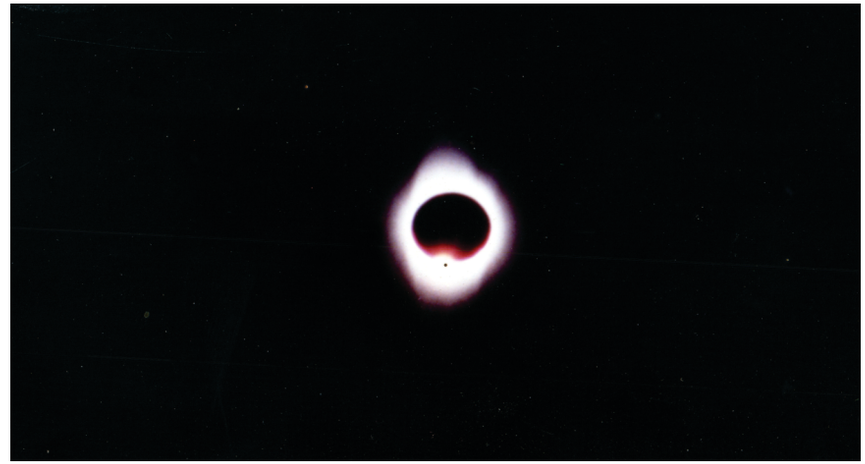

24 अक्टूबर 1995 का पूर्ण सूर्यग्रहण (चित्र: ऋचा कपूर)

अधिकांश मात्रा केन्द्रित होती है गुरुत्व से सिकुड़ता जाता है । इसकी गर्मी से तारे के बाहरी हिस्से फैल जाते हैं और ठंडा होकर तारा लाल रंग के विशालकार रुप में चमकने लगता है (रेड जायंट) । केन्द्र में ताप बहुत अधिक बढ़ जाने पर नाभिकीय प्रक्रियायें हीलियम को भारी तत्वों में तब्दील करने लगती हैं । ऐसे में तारा अपनी चमक भी बदलने लग सकता है । भारी तत्वों का केन्द्र में जमाव बढ़ता जाता है । सिकुड़ते - सिकुड़ते आख़िरकार यह श्वेत वामन का रुप ले लेता है । कल्पना कीजिए, जहाँ सूर्य के पदार्थ का औसत घनत्व पानी से बहुत ज़्यादा नहीं है, पृथ्वी के से आकार के श्वेत वामन का पदार्थ पानी से लाखों गुना घना हो सकता है - एक चम्मच भर पदार्थ और कई टन वज़नी । श्वेत वामन अपनी गर्मी सिकुड़ने से पैदा करता है । धीरे धीरे ठंडा होकर यह अपनी चमक खोता है । सूर्य के मुकाबले कुछ ज़्यादा भारी तारों का अंत ऐसा गुपचुप नहीं होता । ये अपना पदार्थ धीरे धीरे आवेशित कणों की वायु के रुप में या अचानक विस्फोट में छितराते हैं । इसी दौरान होता है वलयाकार नीहारिकाओं का जन्म । अन्त में तारे का भार सूर्य से 1.4 गुना से कम ही रहता है । तारों के जीवन वृत्त में 1.4 सूर्य की मात्रा की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इसे चंद्रशेखर लिमिट कहते हैं । इसके अनुसार 1.4 सूर्य से भारी तारों को अपने जीवन वृत्त में अस्थायित्व का सामना करना पड़ता है । यदि तारे की मात्रा सूर्य से लगभग 10 गुना या ज़्यादा है तो यह अपनी अधिकाँश मात्रा एक ज़बरदस्त विस्फोट में छितरा देता है । ऐसे में इसकी चमक समस्त आकाश गंगा या खरबों सूर्यों की चमक की बराबरी कर सकती है । इसे सुपरनोवा कहते हैं । हज़ारों किलोमीटर

प्रति सैकंड की रफतार से अपना पदार्थ छिटक कर बच जाता है इसका अत्यन्त घना केन्द्र भाग । 1.4 सूर्य या इससे थोड़ा भारी होने के कारण यह गुरुत्व के अधीन अकल्पनीय रुप से सिकुड़ जाता है क्योंकि श्वेत वामन के घनत्व (10^5 ग्राम प्रति घन सेंमी) पर इलैक्ट्रानों द्वारा लगाया हुआ दबाव इस सिकुड़न को रोकने में समर्थ नहीं होता । सिकुड़ते सिकुड़ते शीघ्र ही केन्द्र भाग 10-20 कि.मी. का आकार ले लेता है । इस दौरान इसके पदार्थ के परमाणु टूट चुके हैं, परमाणुओं के नाभिक टूट चुके हैं, नाभिक में मौज़ूद प्रोटान इलेक्ट्रानों के साथ संयोग कर न्यूट्रॉनों में बदल चुके हैं । तारे का अधिकांश पदार्थ अब चूँकि न्यूट्रॉनों के रुप में होता है, इस न्यूट्रॉन तारा कहते हैं । न्यूट्रॉनों का दबाव 10-20 कि मी में बंद 1.4 सूर्य की मात्रा को स्थायित्व प्रदान कर इसे और ज़्यादा घनीभूत होने से रोकता है । अकल्पनीय रुप से घना पदार्थ जिसका घनत्व 10^{14} - 10^{15} ग्राम प्रति घन से.मी. है अर्थात् पानी से कई कई हज़ार खरब गुना ज़्यादा । अगर तौल सकें तो इसका चम्मच भर पदार्थ एक अरब टन, अर्थात भारतीय उपमहाद्वीप के सभी मनुष्यों के सम्मिलित भार से ज़्यादा वज़नी होगा । सूर्य से मात्रा में 30 गुना या ज़्यादा भार वाले तारों का अंत और भी हैरत अंगेज़ है । सुपरनोवा के विस्फोट में बचे केन्द्रभाग का भार ऐसे में सूर्य से तीन गुना या ज़्यादा हो सकता है । इसका सिकुड़ना तब न्यूट्रॉन तारे के से घनत्व पर भी नहीं रुकेगा । न्यूट्रॉनों द्वारा लगाये गये दबाव पर (अधिक मात्रा होने से) गुरुत्वाकर्षण विजय पा लेता है । सिकुड़ते सिकुड़ते इसका पदार्थ इतना छोटा आकार ले लेता है कि सामान्य सापेक्षिकता के सिद्धान्त की भाषा में "यह अपने आप में बंद" सा हो जाता है । इसके गुरुत्वाकर्षण की शक्ति इतनी ज़्यादा होती है कि कोई भी कण, यहाँ तक कि प्रकाश तक इससे बाहर नहीं निकल सकता । इसका लाक्षणिक आकार 'श्वार्तशाइल्ड रेडियस' कहलाता है । 'सूर्य के लिए 3 कि मी, 100 कि ग्राम भार के मनुष्य के लिए 3.10^{-23} सें.मी. । यही है ब्लैक होल जिसे आधुनिक विज्ञान का सबसे अनूठा विचार कहा जा सकता है । क्या न्यूट्रॉन तारे व ब्लैक होल एक सच्चाई हैं ? इनकी विद्यमानता के संकेत ऐसे कई तारों में मिलते हैं जो गामा व एक्स किरणों का प्रचंड, सूर्य से हज़ारों गुना, उत्पादन करते हैं । इस प्रचंड उत्पादन का कारण गुरुत्वाकर्षण ही हो सकता है और यह कार्य न्यूट्रॉन तारे या ब्लैक होल ही कर सकते हैं । तरीक़ा बहुत आसान है: इनके आसपास के अंतरिक्ष में मौज़ूद गैसीय पदार्थ इनके गुरुत्व के वशीभूत इनकी ओर खिंच कर इनमें गिरता है । या किसी युग्म तारे का एक घटक होने के कारण जब भी दूसरे तारे का पदार्थ इनकी गिरफ़्त में आ जाता है तो वह अपनी स्थिर मात्रा के बड़े भाग के समतुल्य ऊर्जा खोकर अंतरिक्ष में विकीर्ण करता है। आमतौर पर यह गैसीय पदार्थ इनके चारों ओर चकली की शक्ल अख़्त्यार कर लेता है । इसके अलावा 1967 में रेडियो दूरबीन की सहायता से खोजे गये पल्सार वास्तव में अपनी अक्ष पर प्रतिसैकंड कई

बार - यहाँ तक कि 642 बार तक - घूम जाने वाले न्यूट्रॉन तारे हैं । इनका विकिरण हमें पल्स के रुप मे एक स्थिर अंतराल (कुछ मिली सैकंड से लेकर कुछ सैकंड तक) में मिलता है । पल्सार के न्यूट्रॉन तारे का चुम्बकीय क्षेत्र धरती के मुकाबले करोड़ों से लेकर कई हज़ार अरब गुना हो सकता है । इनका रेडियो विकिरण, ऐसा अधिकांश वैज्ञानिकों का विश्वास है प्रकाश स्तंभ जैसा, तारे की चुम्बकीय अक्ष की दिशा में होता है जो इनकी घूमने की अक्ष से एक विशेष कोण पर झुकी होती है । अपनी अक्ष पर घूमते रहने के कारण जब जब इस प्रकाश स्तंभ से विकिरण हम तक पहुँचता है तो हम पल्सार से पल्स दर पल्स पकड़ते हैं ।

क्रैब नीहारिका, 2 मीटर हिमालयन चंद्रा दूरबीन से लिया गया चित्र

सूर्य से 10 हज़ार प्रकाश वर्ष के भीतर हम कई गोलाकार तारा पुँजों को पाते हैं । 150 से 300 प्रकाश वर्ष के आकार के 50,000 से लेकर कई लाख तारों के ये घने तारा पुंज ब्रह्माण्ड में दूरियों के माप व तारों के जीवन वृत्त के कई अहम पहलुओं के बारे में हमें महत्वपूर्ण जानकारी देते हैं । नियमित रुप से अपनी चमक बदलने वाले कुछ विशेष प्रकार के तारे इनमें पाये जाते हैं । इनकी चमक परिवर्तन के काल व निरपेक्ष तेजस्विता में जो संबंध है उसे तारे

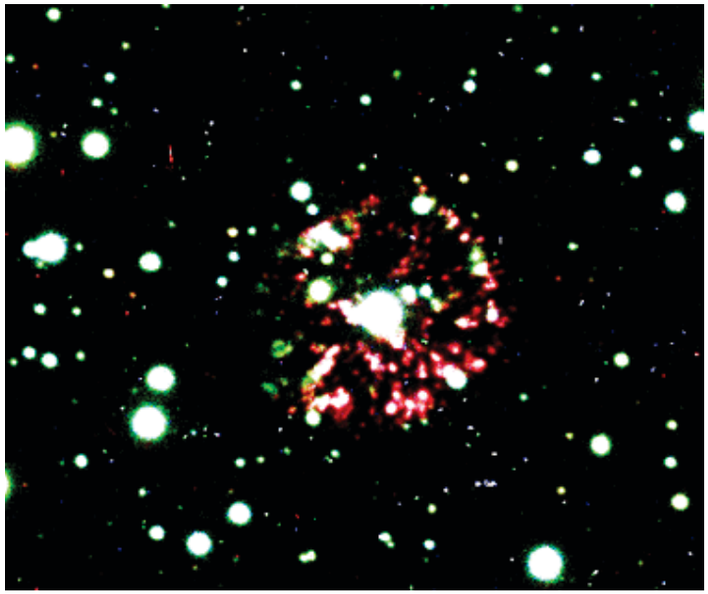

नवतारा GK Persei 1901 के गैसीय अवशेष, 2 मीटर हिमालयन चंद्रा दूरबीन से लिया गया चित्र

की दूरी से सहज ही जोड़ा जा सकता है । इन्हीं की मदद से 1917 में प्रख्यात अमरीकी खगोलविद् हारलो शैप्ले ने पहली बार हमारी आकाशगंगा की सही शक्ल का ख़ाका तैयार किया था । आज हम जानते है कि आकाशगंगा कुछ खरब तारों, सैंकड़ों तारा पुंजों व नीहारिकाओं का एक विशाल सर्पिलाकार समूह है जो 50 हज़ार प्रकाश वर्ष चौड़ी व इससे दुगनी बड़ी है । अपना सर्पिल रुप बनाये रखने के लिए इसे अपने अक्ष पर बीस करोड़ साल में एक बार घूम जाना पड़ता है (यह घूमना किसी ठोस पदार्थ के अक्ष भ्रमण के समान नहीं है) । भार व चमक में अनुमानत: 2-20 खरब सूर्यों के बराबर तो होगी ही । सूर्य इसके केन्द्र से 30 हज़ार प्रकाश वर्ष की दूरी पर स्थित है । आकाशगंगा को तीन घटकों में बाँट सकते हैं : 50 हज़ार प्रकाश वर्ष आकार का नाभिक, 50 हज़ार प्रकाश वर्ष के व्यासार्ध व कुछ हज़ार प्रकाश वर्ष की मोटाई की चकली और इस सब को घेरे 50 हज़ार प्रकाश वर्ष तक फैला गोलाकार तारापुँजों व छिटके तारों से निर्मित एक गोल सा है । ऐसा नहीं कि तारों के बीच का अंतरिक्ष खाली ही है । धूल (ग्रेफाइट या सिलिकेट, ठोस हाइड्रोजन) व गैस का अत्यन्त विरल (लगभग निर्वात जिसका घनत्व होगा 10^{-24} ग्राम प्रति घन सेंमी) माध्यम, जो मुख्यत: हाइड्रोजन है, आकाशगंगा में मौज़ूद है । कहीं कहीं घनीभूत अवस्था - नीहारिकाओं - के रुप में यह अपनी अनूठी छटा तब पेश करता है जब यह अपने आसपास के चमकीले

तारों के प्रकाश का अल्ट्रावायलेट हिस्सा सोख कर स्वयं मुख्यत: लाल रंग की आभा ले लेता है । कहीं कहीं गैस के बादल अदृश्य रहते हैं । ऐसे में अपनी पृष्ठभूमि के तारों का प्रकाश रोक लेते है । आमतौर पर अंतर्तारकीय माध्यम (धूल व हाइड्रोजन) अपनी मौज़ूदगी का एहसास हमें दूर के तारों के प्रकाश के नीलवर्णी हिस्सों को छितरा कर हम तक पहुँचने से रोकने में देता है । अपने जैसे नज़दीक के तारों के मुकाबले इन तारों का प्रकाश अधिक लालिमा लिए होता है । रेडियो व माइक्रोवेव तरंगों के माध्यम से हमें आणविक हाइड्रोजन के विशाल बादलों की मौजूदगी की भी सूचना मिली है ।

विशाल ब्रह्माण्ड

हमारी आकाशगंगा ब्रह्माण्ड में मौज़ूद खरबों मंदाकिनियों में से एक है । इसके केन्द्र से 25 लाख प्रकाश वर्ष के घेरे में शायद 2 दर्जन आकाशगंगायें होंगी । हमारी आकाशगंगा के दो उपग्रह हैं इन्हें छोटे व बड़े मेगलन क्लाउड के रुप में जाना जाता है । दोनों स्वयं में स्वतन्त्र करोड़ों तारों से निर्मित छोटी छोटी मंदाकिनियाँ हैं, हमसे क्रमश: 2 लाख व 1.7 लाख प्रकाश वर्ष दूर । हमारी आकाशगंगा से एक करोड़ प्रकाश वर्ष के घेरे के भीतर के अंतरिक्ष पर

तारास्फोट मंदाकिनी NGC 1637 (चित्र : 2 मीटर हिमालयन चंद्रा दूरबीन)

मंदाकिनी NGC 2903 (चित्र : 2.34 मी वेणुबापू दूरबीन)

दृष्टि डालने से ब्रह्माण्ड का सामान्य रुप स्पष्ट हो जाता है । ब्रह्माण्ड का अधिकांश पदार्थ हमें आकाशगंगाओं में सिमटा दिखता है । हमारी आकाशगंगा जैसी सर्पिलाकार आकाशगंगायें कुल का केवल 15 प्रतिशत है । अधिकाँश दीर्घवृत्ताकार है, कुल का 70 प्रतिशत । बाकी अनियमित शक्ल लिए हैं। एक दूसरे से लाखों प्रकाश वर्ष की दूरी पर रहते हुए अंतरिक्ष में ये बेतरतीबी से फैली हैं । कहीं अकेली, कहीं जोड़ों में या छोटे समूहों में तो कहीं हज़ारों की संख्या में सदस्यता लिए विशाल पुँजों का निर्माण करती हैं । ये पुँज और बड़े स्तर पर वृहद पुँजों का निर्माण करते हैं । हमारी आकाशगंगा 30 मंदाकिनियों के समूह की एक सदस्य है । इसे लोकल ग्रुप कहते हैं । आकाशगंगाओं के बीच का अंतरिक्ष हमारी आकाशगंगा के अंततारकीय माध्यम के मुकाबले लाखों गुना अधिक विरल है पर गैस व धूल की मौज़ूदगी के संकेत यहाँ भी मिलते है । ब्रह्माण्ड में इसकी मात्रा भी शायद मंदाकिनियों की सम्मिलित मात्रा के मुक़ाबले बहुत ज़्यादा हो सकती है । जहाँ आकाशगंगाओं के भीतर तारों के आपस में टकराने की संभावना नहीं के बराबर है, आकाशगंगाओं के स्तर पर ऐसी घटनाओं का होना असंभव नहीं । ऐसे में जब कभी ये एक दूसरे के पास आती हैं तो जोड़ा बना कर एक

दूसरे के चारों ओर घूमते आखिरकार एक हो सकती हैं या आमने सामने आकर एक दूसरे के बीच से गुज़र सकती हैं । एक दूसरे के पदार्थ (तारे, गैस) पर इनकी ज़ोर आजमाइश चलती है यहाँ तक कि कभी सेतु का निर्माण भी हो सकता है । कुछ बड़ी आकाशगंगायें पुंज में मौज़ूद अन्य हल्की मंदाकिनियों को आत्मसात तक कर लेती हैं ।

ब्रह्माण्ड का उद्भव

ब्रह्माण्ड की इस सरसरी झलक को पेश कर अब हम इस स्थिति में हैं कि इसकी उत्पति के विषय में कुछ चर्चा कर सकें । ब्रह्माण्ड के उद्भव व विकास से संबंधित लगभग सभी सिद्धान्त आइंस्टाइन के सापेक्षिकता के सामान्य सिद्धान्त पर आधारित हैं । आइंस्टाइन का यह सिद्धांत जिसे वैचारिक दृष्टि से बीसवीं सदी का सबसे महत्वपूर्ण योगदान माना जा सकता है, गुरुत्वाकर्षण को एक नये नज़रिये से देखता है । इसी के आधार पर ब्रह्माण्ड के विशद रुप का चित्रण गणित के चन्द समीकरणों के द्वारा किया जा सकता है । दूसरी ओर इसी सदी में खगोल में हुई कुछ महत्वपूर्ण खोजों ने ब्रह्माण्ड की उत्पति से संबंधित अनेक विचार धाराओं को एक निश्चित दिशा प्रदान की है । इनमें मुख्यतम है सर्पिल नीहारिकाओं का स्वतन्त्र मंदाकिनियों के रुप में पहचाना जाना । दूसरा है 1920 के आसपास खोजा गया इनके वर्णक्रम की रेखाओं का वर्णक्रम के लाल हिस्सों (अधिक लम्बाई की तरंगों) की ओर विचलन या 'रेड शिट' । 'डॉप्लर प्रभाव' के मुताबिक जैसा कि हम जानते हैं ध्वनि का कोई स्रोत जब दर्शक की ओर या उससे दूर जाता है तो उसकी ध्वनि की तरंगों की लम्बाई उसके वेग के हिसाब से घट बढ़ जाती है । प्रकाश के संदर्भ में यही बात लागू होती है । वर्णक्रम में रेखाओं का इसके लाल हिस्से (जो सबसे ज़्यादा तरंग लंबान के है) की ओर विचलन प्रकाश के स्रोत के हमसे दूर होते जाने का द्योतक है । 'रेडशिट' घटना की व्याख्या यदि 'डाप्लर प्रभाव' के आधार पर की जाय तो जो महत्वपूर्ण बात हमारे सामने आती है वह यह है कि चन्द नज़दीक की मंदाकिनियों को छोड़ कर ब्रह्माण्ड की लगभग सभी आकाशगंगायें हमसे सैकंड़ों, हज़ारों किलोमीटर प्रति सेकंड की रफ़्तार से दूर भागी जा रही हैं । इस दिशा में अगली महत्वपूर्ण खोज तब हुई जब 1929 में अमरीकी खगोलविद् एड्विन हबल ने घोषित किया कि भागने की गति का सीधा संबंध आकाशगंगा की दूरी से है । जितना ज़्यादा 'रेडशिट' का परिमाण होगा उतनी ही भागने की गति, व उसी हिसाब से आकाशगंगा की हमसे दूरी ।

1960 में खगोल में उथल पुथल का दशक शुरु हुआ । नई तकनीक, उपकरण व वर्णक्रम के विभिन्न हिस्सों पर शोध के नये आयाम स्थापित हुए । इसी दशक में 1960-1963 में

आकाश में क्वेसार नामक रहस्यमय रेडियो स्रोतों की खोज हुई । इनके विकिरण के लक्षण ब्लैक बॉडी वर्णक्रम की बजाय सिंक्रोट्रॉन वर्णक्रम से मिलते जुलते पाये गये । आकार व प्रकृति में ये आकाशगंगाओं से मेल नहीं खाते थे, दूसरी ओर इन्हें आम तारों सदृश भी नहीं कहा जा सकता । इनसे जो प्रचंड ऊर्जा आती है वह आम आकाशगंगाओं की ऊर्जा से हज़ारों गुना ज़्यादा हो सकती है । खगोलीए स्तर पर यह सब ऊर्जा बहुत ही छोटे क्षेत्र (आकार में कुछ प्रकाश वर्ष या उससे भी कम) में उत्पन्न होती है । इसीलिए इन्हें क्वासी स्टेलर रेडियो सोर्स या क्वेसार कहा गया । आज हज़ारों क्वेसारों से हमारा परिचय है और इनमें अधिकांश रेडियो तरंगों के प्रचंड स्रोत भी नहीं हैं । पिछले 40 वर्षों में क्वेसारों पर इतना कार्य हुआ है कि उसके लिए अलग से एक पुस्तक लिखी जा सकेगी, यहाँ इतना जानना काफी है कि क्वेसार सर्पिल आकाशगंगाओं से अलग नहीं हैं पर इनका केन्द्र भाग बहुत घना है व जिसकी प्रकृति विलक्षण है । खगोलविदों का बहुमत यह मानता है कि वहाँ सूर्य से दसियों लाख से लेकर दसियों करोड़ गुना अधिक मात्रा के ब्लैक होल विद्यमान हैं । इसके आसपास मौजूद गैसीय पदार्थ ब्लैक होल में इसके आकर्षण के वशीभूत गिरता जाता है व अपनी ऊर्जा का बड़ा भाग अंतरिक्ष में विकीर्ण करता है । इस विकीर्ण ऊर्जा की चमक इतनी प्रचंड है कि इसके मुक़ाबले क्वेसार के चारों ओर की आकाश गंगा के अन्य तारों की सम्मिलित चमक भी बहुत मद्धम पड़ जाती है । नज़दीक के कुछ क्वेसारों में ही पिछले कुछ वर्षों में इसे देख पाना संभव हुआ है । इनके वर्णक्रम की रेखाओं की रेडशिफ़्ट आम आकाशगंगाओं के मुकाबले बहुत ज़्यादा परिणाम की पाई गई हैं । इसके आधार पर इन्हें आकाश की दूरतम वस्तुएँ माना जाने लगा है । आज जो सबसे ज़्यादा रेडशिट वाला क्वेसार हमें ज्ञात है उसकी दूर भागने की गति प्रकाश की गति का 90 प्रतिशत, या 2,70,000 कि. मी. प्रति सैकंड से भी अधिक होनी चाहिए । हबल के नियमानुसार इसकी हमसे दूरी होगी 15 अरब प्रकाश वर्ष, ब्रह्माण्ड का एक छोर । यद्यपि कुछ खगोलविदों की क्वेसारों की दूरियों के बारे में राय थोड़ी हट कर है, रेडशिफ़्ट द्वारा सुझाई गई इनकी दूरियों को अधिकांश खगोलविद् सही मानते हुए इस स्थिति को 'ब्रह्माण्ड के सामान्त विस्तार' के रुप में लेते हैं । इसका अर्थ यह नहीं कि धरती ब्रह्माण्ड के केन्द्र में है, बल्कि चाहे किसी भी आकाशगंगा से देखें, प्रेक्षक को हर आकाशगंगा उससे दूर भागती नज़र आयेगी । यदि ऐसा ही है कि ब्रह्माण्ड फैल रहा है तो क्या ऐसा नहीं लगता कि भूतकाल में सब आकाशगंगायें एक दूसरे के ज़्यादा नज़दीक रही होंगी ? दूसरे शब्दों में भूतकाल में ब्रह्माण्ड का पदार्थ, जिसका औसत घनत्व आज 10^{-30} ग्राम प्रति घन से मी आँका जाता है, ज़्यादा घनीभूत अवस्था में रहा होगा । यदि ब्रह्माण्ड का एक चलचित्र होता और इसे वापस चलाया जा सकता तो हम एक समय ऐसा भी पाते जब ब्रह्माण्ड का समूचा पदार्थ (जिसकी मात्रा है 10^{56} ग्राम) अकल्पनीय रुप से घना था - अनन्त घनत्व व शून्य आकार की स्थिति । भौतिकी में इस स्थिति को सिंगुलैरिटी का नाम दिया गया है । यह

हालत 10-20 अरब वर्ष पूर्व रही होगी । ब्रह्माण्ड के उद्भव के 'बिग बैंग' सिद्धान्त के अनुसार समूचे ब्रह्माण्ड का जन्म इसी अकल्पनीय रूप से घनी अवस्था से हुआ । और यही था समय का आरंभ ।

आधुनिक खगोल विज्ञान के ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त का प्रतिबिंबन हमारे साहित्य में बहुत सुन्दर शब्दों में हुआ है । एक ओर अमृता प्रीतम के शब्दों में

"ते ऐहो हकीकत दी आदि रचना सी । संसार दी रचना तां बहुत पिच्छों दी गल्ल है ।।"

(कागज़ ते कनवास से)

तो दूसरी ओर, उपनिषदों में जैसा कहा गया "आत्मा से आकाश (अंतरिक्ष), आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल व जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई"। 'गुरुबानी' से उद्धृत इस लेख के आरंभ में जहाँ महाविस्फोट में हुई ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का प्रतिबिंबन है, वैदिक युग के अंतिम समय में रचे गये 'सृष्टि सूक्त' में सृष्टि का उद्भव शून्य से हुआ माना गया है :

"तब शून्य भी नहीं था, न अस्तित्व ।
उस समय वायु नहीं था, न इससे आगे आकाश ।
कौन इसे ढके था ? यह कहाँ थी ? किसके संरक्षण में थी ?
क्या उस समय सृष्टि में जल ही जल था, अथाह गहराइयों में ?
पर आखिर कार, कौन जानता है और कौन कह सकता है
यह सब कहाँ से आया, और कैसे सृष्टि की रचना हुई ?"
(रोमिला थापर : 'भारत का इतिहास' में उद्धृत)

ब्रह्माण्ड की प्रारंभिक अवस्था कैसी रही होगी ? पिछले 50 वर्षों में इस विषय में भौतिकी में उल्लेखनीय प्रगति हुई है । ऐसा समझा जाता है कि प्रारंभ में ब्रह्माण्ड घना ही नहीं था अकल्पनीय रुप से गर्म भी था, दूसरे अनियमित भी । पर यह अनियमितता शीघ्र ही खत्म होती गई । 'बिग बैंग' के कुछ ही मिनटों के अन्दर नाभिकीय प्रकियाओं में कुछ हाइड्रोजन हीलियम में तब्दील हो गई । जैसे जैसे ब्रह्माण्ड का पदार्थ फैलता गया, वह ठंडा होता गया । लगभग एक अरब सालों में यह पदार्थ बहुत विरल हो गया । कहीं कहीं घनीभूत होकर इसने आकाशगंगाओं का रुप ले लिया जो सितारों में बंटती गई । आज अपनी रेडशिफ़्ट के हिसाब से हज़ारों कि.मी. प्रति सैकंड की रफतार से भागती जिन मंदाकिनियों व क्वेसारों को हम देखते हैं वे इसी महाविस्फोट का मलबा कहे जा सकते हैं । आकाशगंगाओं में मौजूद तारों की पहली पीढ़ी ने अपने विकास के दौरान नाभिकीय प्रक्रियाओं में और भारी तत्वों का निर्माण किया जैसे कार्बन, आक्सीजन, सिलिकॉन, लोहा । विकास के अंतिम चरणों में ये तारे लाल विशालकार अवस्था में पहुँच कर अपना पदार्थ अंतरिक्ष में छितराने लगे । घनीभूत

होकर यह पदार्थ धूल के रुप में अंततारिकीय माध्यम में व्याप्त होता गया । इसके बाद आकाशगंगाओं में जगह जगह पर घनीभूत गैस व धूल के बादलों में पदार्थ सिकुड़ कर नये तारों का रुप अख्यियार करने लगा। ऐसे ही किसी बादल में बने तारे के चारों ओर धूल के ठंडे गुबार ने चपटी चकली की शक्ल अख्तियार कर ली । धूल के कणों के एक दूसरे से चिपकने का सिलसिला शुरु हुआ । यह पदार्थ कुछ स्थानों पर इक्ट्ठा होते जाने से गुरुत्व के वशीभूत विशाल होता गया और आखिरकार कुछ वृहदाकार पिंडों में बदल गया । कालान्तर में यह सौर मण्डल, व ये पिंड लघु ग्रहों से लेकर ग्रह तक कहलाये ।

ब्रह्माण्ड का उद्भव क्या सचमुच एक महान विस्फोट में हुआ ? कुछ खगोलविद् 1922 में मूल रुप से रुसी वैज्ञानिक फ्राइडमान तथा 1927 में बेल्जियन वैज्ञानिक लमात्र द्वारा, व बाद में 1948 में जार्ज गैमो द्वारा नये रुप में प्रस्तुत 'बिगबैंग' सिद्धान्त से संतुष्ट न हो सके । 1948 में ही ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति पर एक अन्य चित्रण ब्रिटिश गणितज्ञों बॉंडी, गोल्ड व हॉयल ने पेश किया । स्टैडी स्टैट (या स्थायी अवस्था) नामक इस सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्माण्ड का मूलभूत रुप हमेशा, व सब स्थान पर एक सा रहता है । ब्रह्माण्ड का विस्तार दिक् व काल में अनन्त है । न इसका आदि है न अंत । ब्रह्माण्ड में फैलाव की स्थिति तो है पर जैसे जैसे आकाशगंगायें दूर होती जाती हैं पुराना पदार्थ अपने आप अंतरिक्ष में विलीन होता जाता है । इसका स्थान ल्रेने के लिए नया पदार्थ अंतरिक्ष में अपने आप पैदा होता रहता है जिससे नई आकाशगंगाओं की सृष्टि होती है, 'कुछ नहीं' से इस कुछ का निर्माण ही ब्रह्माण्ड का दिक् व काल में एक सा रुप बनाये रखता है ।

ब्रह्माण्ड के बारे में कौन सी बात सही है ? सिद्धान्त की परख तो प्रयोग या अवलोकन की कसौटी पर है । सबसे पहली बात तो यह है कि जब हम आकाश में किसी तारे या आकाश गंगा को देखते हैं तो वास्तव में हम भूतकाल में झाँक रहे होते है । यदि किसी तारे की हमसे दूरी 100 प्रकाश वर्ष है तो इसका सीधा मतलब है 100 वर्ष पूर्व वहाँ से चला प्रकाश हम तक आज पहुँच रहा है । जब हम दूर की आकाशगंगाओं या क्वेसारों को देखते है तो हम करोड़ों अरबों वर्ष पूर्व के इनके रूप को देख रहे होते हैं । स्थायी अवस्था सिद्धांत के आनुसार आज व करोड़ों, अरबों वर्ष के ब्रह्माण्ड में एकरुपता होनी चाहिए जबकि महाविस्फोट सिद्धान्त के अनुसार ऐसी स्थिति हो ही नहीं सकती । खगोलविद् ने इस समस्या को सुलझाने का प्रयास उन आकाशगंगाओं व क्वेसारों के अध्ययन के आधार पर किया है जो रेडियो तरंगों के शक्तिशाली स्रोत हैं, औसत आकशगंगा के मुकाबले इस लिहाज़ से सैकड़ों गुना शक्तिशाली । इन अध्ययनों से यह पता चलता है कि ब्रह्माण्ड विकसित हो रहा है । यह एक ऐसा अवलोकन है जो स्थायी अवस्था सिद्धान्त के अनुरूप नहीं प्रतीत होता ।

स्थायी अवस्था सिद्धान्त एक अन्य महत्वपूर्ण दृष्टिकोण से भी असफल रहा है । यह महत्वपूर्ण अवलोकन है आकाश के हर कोने से धरती की ओर आता एक विशेष प्रकार का माइक्रोवेव विकिरण । यदि हम यह मान लें कि ब्रह्माण्ड का उद्भव एक महा विस्फोट में हुआ तो जार्ज गैमो के अनुसार एक ऐसा विकिरण क्षेत्र भी पाया जाना चाहिए जो ब्रह्माण्ड के कोने कोने में व्याप्त हो । भौतिकी के नियमों के अनुसार इस विकिरण के लक्षण 'ब्लैक बॉडी' विकिरण से मिलते जुलते होने चाहिए । इस विकिरण का लाक्षणिक ताप ब्रह्माण्ड के फैलाव के साथ साथ घटता जाना चाहिए । उत्पत्ति के 10-20 अरब वर्ष बाद अर्थात् आज इसका ताप परम शून्य (शून्य डिग्री केल्विन या - 273 डिग्री सेंटीग्रेड) से कुछ ही डिग्री ऊपर होना चाहिए । 1965 में अमरीकी वैज्ञानिकों पेन्ज़ियास व विल्सन (जिन्हें इस खोज के लिए नोबेल पुरस्कार भी मिला) ने एक ऐसा ही विकिरण क्षेत्र अकस्मात् खोज निकाला । यह विकिरण आकाश के हर कोने से समान रुप से पृथ्वी तक पहुँचता है । इसका वर्णक्रम तकरीबन वैसा ही है जैसा परम शून्य से 2.7 डिग्री ऊपर अर्थात 2.7 डिग्री केल्विन पर किसी ब्लैक बॉडी का होना चाहिए । पिछले 40 वर्षो के अध्ययन ने इस विकिरण को आज 'बिग बैंग' का एक प्रबल समर्थक बना दिया है । स्थायी अवस्था सिद्धान्त इसके लिए विश्वसनीय व प्राकृतिक कारण नहीं दे पाया है । मुख्यतया इन्हीं कारणों से स्थायी अवस्था सिद्धान्त को कठिनाइयों का सामना करना पडा है चाहे दार्शनिक दृष्टिकोण से महाविस्फोट सिद्धान्त के मुकाबले यह ज़्यादा आकर्षक लगता है ।

पर ऐसा नहीं कि महाविस्फोट सिद्धान्त के लिए सब कुछ ठीक ठाक ही हो । चाहे खगोलीय अवलोकन इस समय ब्रह्माण्ड के महाविस्फोट में उद्भव की ओर संकेत करते माने जाते है खगोलविद् अभी यह तय नहीं कर पाये हैं कि महाविस्फोट का कौन सा प्रतिरूप सच्चाई के ज़्यादा नज़दीक है । अहम मसले बहुत से हैं । एक महत्वपूर्ण समस्या है कि आख़िर आकाश गंगाओं के रूप में पदार्थ कैसे घनीभूत हुआ ? दूसरे, क्या ब्रह्माण्ड ऐसे ही फैलता जायेगा ? यदि नहीं तो फिर ब्रह्माण्ड में पदार्थ इतनी अधिक मात्रा में होना चाहिए (उससे कहीं ज़्यादा जिससे आज की विशाल दूरबीन खगोलवेत्ता को परिचित करा चुकी हैं) कि इसके आपसी आकर्षण से ब्रह्माण्ड का फैलाव आख़िरकार रुक जाए और यह सिकुड़ना आरंभ कर दे । ऐसी हालत में एक समय ऐसा आयेगा जब दूर होती आकाशगंगायें एक दूसरे के नज़दीक आती जायेंगीं । आखिरकार ब्रह्माण्ड का समूचा पदार्थ फिर इक्ट्ठा हो जायेगा अकल्पनीय रुप से घनीभूत अवस्था में । इस 'बिग स्क्वीज़' के बाद, शायद एक और महाविस्फोट । ब्रह्माण्ड की नियति क्या यही है ? विस्फोट में उद्भव, फैलाव व निरंतर सिकुड़ते जाने में अंत ? हो सकता है ऐसा होता रहा हो, भविष्य में भी यही होता रहे । यह संभावना है तो आकर्षक पर दिक्कतें यहाँ भी हैं । ब्रह्माण्ड के फैलाव को गणित के कुछ सरल समीकरणों से बख़ूबी दर्शाया

जा सकता है जो आइंस्टाइन के सापेक्षिकता के सामान्य सिद्धान्त पर आधारित हैं । इन समीकरणों की कठिनाई यह है कि ये भूतकाल में उस विशेष स्थिति की ओर भी इशारा करते हैं : ब्रह्माण्ड के समस्त पदार्थ का केन्द्रीकरण - अनंत घनत्व व शून्य आकार की स्थिति (सिंगुलैरिटी) । यह विशेष स्थिति न सिर्फ ब्रह्माण्ड में कभी रही होगी, भविष्य में भी यह अनिवार्य हो जायेगी यदि समय आने पर ब्रह्माण्ड का फैलाव समाप्त होकर कभी सिकुड़न में तब्दील हो जाय । भौतिकीविद् के लिए यह स्थिति अत्यंत चिन्ताजनक व खोज का प्रमुख विषय है क्यों कि इसकी मौज़ूदगी उन सभी भौतिकी के नियमों के लिए संकट है जिनके आधार पर ब्रह्माण्ड की संरचना व इसके विकास को इस हद तक समझा जा सका है । इस सैद्धान्तिक अड़चन को निकाल बाहर करने में भौतिकीविदों ने दिमाग़ी कसरत तो पिछले कई दशकों से की है पर असफलता ही हाथ लगी है । उल्टे लगता यह है कि यदि ब्रह्माण्ड का विवेचन केवल कुछ सर्वमान्य मूलभूत नियमों के अनुरूप किया जाय तो अनंत घनत्व व शून्य आकार की यह स्थिति ब्रह्माण्ड के भूतकाल में रहेगी ही । उस पर यदि फैलाव के बाद ब्रह्माण्ड सिकुड़ने लगता है तो ऐसी संभावना है कि यह स्थिति इसके लिए भविष्य में फिर से पैदा होगी ।

इसका अर्थ यही है कि ब्रह्माण्ड चक्रीय नहीं हो सकता जब तक कि आइंस्टाइन के गुरुत्वाकर्षण संबंधी सिद्धान्त में आमूल परिवर्तन करने के लिए भौतिकी में कुछ नये नियमों का समावेश नहीं किया जाता । ये नये नियम क्या हैं, अभी किसी को पता नहीं । हालाँकि ऐसे सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये हैं जो ब्रह्माण्ड का इस 'भयावह' स्थिति से बचाव करते हैं । व्यापक रुप से अभी इन्हें मान्यता नहीं मिली है । इसके अलावा विस्फोट के समय (शून्य समय) से लेकर 10^{-43} सैकंड के भीतर ब्रह्माण्ड में क्या हुआ यह भौतिकी के स्थापित नियमों के दायरे से अभी बाहर है । बिग बैंग के 10^{-43} सैकंड बाद से लेकर आज तक भौतिकी के नियम ब्रह्माण्ड की बदलती अवस्था को समझने में पूर्ण रुप से सक्षम है ।

ब्रह्माण्ड शास्त्र (कॉस्मोलॉजी) आज भौतिकी व खगोल में शोध का महत्वपूर्ण विषय है । ऊपर जो लिखा गया है वह अत्यंत सरल चित्र पेश करता है । पेचीदगियाँ अनगिनत हैं व बहुत से ऐसे वैज्ञानिक भी हैं जिन्हें संदेह है कि इस विषय पर कभी अंतिम, या यों कहें, सत्य के नज़दीक शब्द लिखा जा सकेगा । इतना जरुर है कि ब्रह्माण्ड शास्त्र बाइबिल की 'जिनेसिस' के उस विवरण से बहुत दूर आ चुका है जिसके आधार पर बिशप जेम्स अस्सर (1581-1656) ने समस्त सृष्टि के निर्माण का समय निश्चित किया था: 4004 ई. पूर्व, 22 अक्टूबर, संध्या 6 बजे ।

सौरमण्डल

ग्रह	औसत व्यास (किमी)	सूर्य से दूरी (करोड़ किमी में)	परिक्रमा काल (वर्ष)	अक्षभ्रमण काल	कक्षामें घूमने की गति (किमी/सेकंड)	मात्रा (पृथ्वी = 1)	उपग्रहों की संख्या (पृथ्वी = 1)*	सतह पर आकर्षण (पृथ्वी = 1)+
बुध	4864	5.79	0.241	58.65 दिन	47.8	0.06	0	0.38
शुक्र	12102	10.82	0.615	243 दिन	35.1	0.82	0	0.90
पृथ्वी	12756	14.96	1.000	23 घंटे 56 मिनट	29.7	1.00	1	1.00
मंगल	6794	22.79	1.881	24 घंटे 37 मिनट	24.1	0.11	2	0.35
बृहस्पति	142500	77.83	11.862	9 घंटे 50 मि	13.0	317.833	22+	2.64
शनि	120500	142.70	29.458	10 घंटे 14 मि	9.6	95.2	17+	1.13
यूरेनस	50500	286.96	84.013	10 घंटे 49 मि	6.8	14.6	15+	1.07
नेप्चून	48600	449.66	164.793	16 घंटे	5.5	17.2	2+	1.08
प्लूटो	3000	589.99	247.686	6.39 दिन	4.7	0.0026	1+	0.3

पृथ्वी की मात्रा = 6.27×10^{24} Kg
पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण = 9.8 m sec^{-2}

राशि	प्रोटॉन	मनुष्य	सौरमण्डल	आकाशगंगा	ब्रह्माण्ड
मात्रा (ग्राम)	1.7×10^{-24}	6×10^{4}	2×10^{33}	10^{45}	10^{56}
आकार (सेमी)	10^{-13}	1.6×10^{2}	10^{15}	3×10^{22}	10^{28}
आयु (सेकंड)	3×10^{40}	2×10^{9}	1.5×10^{17}	$(3–6) \times 10^{17}$	$(3–6) \times 10^{17}$

BANGALORE

GAURIBIDANUR

HANLE

भारतीय ताराभौतिकी संस्थान

भारतीय ताराभौतिकी संस्थान देश का एक प्रमुख संस्थान है जो खगोल, ताराभौतिकी एवं संबंधित भौतिकी में शोधकार्य को समर्पित है। इसका उद्‌गम मद्रास (चेन्नै) में 1786 में स्थापित की गयी एक निजी वेधशाला से जुड़ा है जो वर्ष 1792 में नुंगम्बक्कम में मद्रास वेधशाला के रुप में कार्यशील हुई। वर्ष 1899 में इस वेधशाला को कोडैकानल में स्थानान्तरित किया गया। 1971 में कोडैकानल वेधशाला ने एक स्वायत्त संस्था भारतीय ताराभौतिकी संस्थान का रुप ले लिया। संस्थान का मुख्यालय कोरमंगला, बंगलौर में अपने नये परिसर में वर्ष 1975 में स्थानान्तरित हो गया। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के अवलम्ब से संचालित यह संस्थान आज देश में खगोल एवं भौतिकी में शोध एवं शिक्षा का एक प्रमुख केन्द्र बन गया है। संस्थान की प्रमुख प्रेक्षण सुविधायें कोडैकानल, कावलूर, गौरीबिदनूर एवं हान्ले में स्थित हैं।

एक शताब्दी से भी अधिक समय से कोडैकानल वेधशाला प्रेक्षणात्मक सौर एवं वायुमण्डलीय भौतिकी में सक्रियता का मुख्य केन्द्र रही है। कावलूर स्थित वेणु बापू वेधशाला 1970 के दशक से रात्रिकालीत खगोल की मुख्य प्रकाशिक वेधशाला रही है। यहाँ अनेक दूरदर्शी कार्यशील हैं ज़िनमें प्रमुख है 2.34 मीटर वेणुबापू दूरदर्शी। गौरीबिदनूर रेडियो वेधशाला में एक डेकामीटर तरंग रेडियो दूरदर्शी विन्यास एवं रेडियो हीलियोग्राफ़ स्थापित हैं।

दक्षिण-पूर्व लद्दाख़ के हान्ले नामक स्थान में स्थापित की गयी नयी उच्च उत्तुंग भारतीय खगोल वेधशाला ने संस्थान की रात्रिकालीन खगोल संबंधी सुविधाओं में वृद्धि की है। यहाँ वर्ष 2001 से 2 मीटर व्यास का हिमालयन चंद्रा दूरदर्शी कार्यरत हैं। सात इकाइयों वाला एक उच्च उत्तुंग गामा किरण दूरदर्शी भी हान्ले में हाल ही में स्थापित किया गया है।

बंगलौर परिसर में एक विशाल पुस्तकालय, संगणक केन्द्र, भौतिकी एवं इलेक्ट्रॉनिकी प्रयोगशालायें, प्रकाशिकी तथा यांत्रिक कार्यशालायें विद्यमान हैं जो संस्थान के सक्रिय उपकरण विकास कार्यक्रम को ठोस अवलम्ब देती हैं।

HOSAKOTE

KAVALUR

KODAIKANAL

ब्रह्माण्ड

एक संक्षिप्त परिचय

रमेश चन्द्र कपूर
भारतीय ताराभौतिकी संस्थान
www.iiap.res.in